

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 22: तत्त्वों की गणना

5 October 2026



उद्धव पूछते हैं कि ऋषिगण सृष्टि के मूल तत्त्वों की संख्या इतनी भिन्न-भिन्न क्यों बताते हैं, और भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्येक गणना का समन्वय करते हैं, फिर प्रकट करते हैं कि पुरुष तथा प्रकृति, नित्य भिन्न होते हुए भी, कैसे एक प्रतीत होते हैं, और आत्मा शान्तिपूर्वक एक शरीर से दूसरे शरीर में कैसे संचरण करती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। पिछले अध्याय में भगवान् ने स्वयं को नित्य वेद के रूप में प्रकट किया, जो समस्त विविधता को पुनः अपने में समेट लेता है। अब उद्धव एक ऐसी जिज्ञासा लाते हैं जो सृष्टि के आदि से साधकों को विचलित करती रही है: अट्ठाईस, पच्चीस, सत्रह, अथवा केवल चार तक — मूल तत्त्वों की कौन-सी गणना सत्य है? भगवान् का उत्तर इस पूरे भागवत की सबसे कोमल शिक्षाओं में से एक है: प्रत्येक गणना सत्य है, क्योंकि प्रत्येक तत्त्व अन्य में समाहित है; पुरुष तथा प्रकृति, अत्यन्त भिन्न होते हुए भी, शरीर में एक प्रतीत होते हैं; और आत्मा, अपरिवर्तनीय होते हुए भी, एक शरीर से दूसरे में भटकती प्रतीत होती है केवल इसलिए कि मन, अपने पूर्वकर्मों के बीज लिए हुए, एक उधार लिए गए घर को अपना मान लेता है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 22 (द्वाविंश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: भौतिक सृष्टि के तत्त्वों की गणना
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका
- केन्द्रीय विषय: तत्त्वों की विविध गणनाएँ, पुरुष तथा प्रकृति की भिन्नता एवं प्रतीत एकता, और आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में संचरण
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 1-60
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 21 में, भगवान् ने उद्धव को सिखाया कि वे स्वयं, अनन्त ब्रह्मा के रूप में, वेद के गुप्त स्रोत हैं — वेद, जो समस्त वस्तुओं का नामकरण तथा विधान करके अन्त में उन्हें मायारूप मानकर त्याग देता है, और अपने ही भीतर शान्त हो जाता है। यह अध्याय उस शान्ति को एक नई जिज्ञासा की ओर ले जाता है: कितने तत्त्व इस विविधता की रचना करते हैं?

उद्धव पूछते हैं — कितने तत्त्व हैं?

उद्धव ने भगवान् के समक्ष एक ऐसी जिज्ञासा रखी जो उन्हें दीर्घकाल से व्याकुल कर रही थी: भगवान् ने स्वयं कभी अट्ठाईस तत्त्वों की चर्चा की थी, फिर भी ऋषिगण छब्बीस से लेकर चार तक की विभिन्न गणनाएँ बताते हैं। किस उद्देश्य से वे इतनी भिन्न-भिन्न संख्याएँ घोषित करते हैं?

श्रीउद्धव उवाच

कति तत्त्वानि विश्वेश सङ्ख्यातान्यृषिभिः प्रभो ।

नवैकादश पञ्च त्रीण्यात् त्वमिह शुश्रुम् ॥ १ ॥

केचित् षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् ।

सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ।

केचित् सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ॥ २ ॥

एतावत्त्वं हि सङ्ख्यानामृषयो यद्विवक्षया ।

गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

śrī-uddhava uvāca kati tattvāni viśveśa saṅkhyātāny ṛṣibhiḥ prabho navaikādaśa pañca trīṇy āttha tvam iha śuśrūma kecit ṣaḍ-vimśatiṁ prāhur apare pañca-vimśatiṁ saptaike nava ṣaṭ kecit catvāry ekādaśāpare kecit saptadaśa prāhuḥ ṣoḍaśaike trayodaśa etāvattvaṁ hi saṅkhyānām ṛṣayo yad-vivakṣayā gāyanti pṛthag āyusmann idaṁ no vaktum arhasi

अर्थ: श्री उद्धव ने कहा: हे विश्वेश्वर, ऋषियों ने कितने तत्त्व गिनाए हैं? आपने स्वयं अट्ठाईस की चर्चा की थी; फिर भी कोई छब्बीस, कोई पच्चीस, सात, नौ, छह, चार, ग्यारह, सत्रह, सोलह अथवा तेरह बताते हैं। ऋषिगण इतनी संख्याओं में क्या अभिप्राय रखकर कहते हैं? (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 1-3)

ऋषिगण भिन्न-भिन्न गणना क्यों करते हैं

भगवान् ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण जो भी कहते हैं वह उचित ही है, क्योंकि उनकी अपनी माया का सहारा लेकर कहने वालों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं; उनके तीन गुण ही प्रत्येक विवाद के पीछे हैं, प्रत्येक ऋषि अपनी ही गणना को सत्य मानता है, किन्तु मन तथा इन्द्रियाँ वश में होने पर भेद का बोध शान्त हो जाता है, और विवाद भी उसके साथ। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 4)

गहरा रहस्य यह है: प्रत्येक तत्त्व अन्य में समाहित है, कारण कार्य को और कार्य कारण को सूचित करता है। कोई ईश्वर को आत्मा से पृथक् छब्बीसवाँ तत्त्व मानता है; कोई पच्चीस पर ही रुक जाता है, आत्मा तथा ईश्वर को एक ही चेतन मानते हुए। मूल तक जाने पर, वही तत्त्व नौ हो जाते हैं — पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच तत्त्व — अथवा सात, अथवा छह, पाँच तत्त्वों के साथ परमपुरुष को छठा मानकर, जो अपनी ही सृष्टि के शासक हैं, अथवा चार, अग्नि, जल तथा पृथ्वी को उस आत्मा से उत्पन्न मानकर। अनुभव के साधनों से देखने पर वे सत्रह, सोलह, तेरह, ग्यारह अथवा नौ हो जाते हैं, उन्हीं तत्त्वों के विविध समूहों से — प्रत्येक गणना समान रूप से युक्ति पर आधारित है। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 10-25)



ऋषिगण चाहे अट्ठाईस, छब्बीस अथवा केवल चार तक गणना करें, भगवान् श्रीकृष्ण दिखाते हैं कि पंच तत्त्वों तथा अन्य सब तत्त्वों की प्रत्येक गणना एक ही अखण्ड सत्य में समाहित है (श्लोक 4-25)।

प्रकृति पुरुष के साथ एक प्रतीत होती है

उद्धव ने तब एक अधिक गूढ़ जिज्ञासा की ओर रुख किया: प्रकृति तथा पुरुष, उन्होंने कहा, पूर्णतः भिन्न हैं, फिर भी उनका भेद कभी दिखता नहीं, क्योंकि प्रत्येक दूसरे में झलकता है — आत्मा केवल शरीर के माध्यम से प्रकट होती है, और शरीर आत्मा से अविभाज्य प्रतीत होता है। क्या भगवान् इसका समाधान करेंगे, क्योंकि केवल वे ही अपनी माया की गति जानते हैं? (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 26–28)

भगवान् घोषणा करते हैं: प्रकृति तथा पुरुष वास्तव में भिन्न हैं

भगवान् ने स्पष्ट उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच

प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ।

एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥ २९ ॥

śrī-bhagavān uvāca prakṛtiḥ puruṣaś ceti vikalpaḥ puruṣarṣabha eṣa vaikārikaḥ sargo guṇa-vyatikarātmakaḥ

अर्थ: भगवान् ने कहा: हे पुरुषश्रेष्ठ, प्रकृति तथा पुरुष एक-दूसरे से मूलतः भिन्न हैं; यही भेद हमें तीन गुणों के क्षोभ तथा परस्पर व्यापार से उत्पन्न इस सृष्टि जगत् के रूप में प्रतीत होता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 29)

उनकी माया, इन्हीं गुणों से निर्मित, अनेक रूपों में यह भेद उत्पन्न करती है। प्रत्येक ज्ञान-कर्म में जो त्रिविध प्रतीत होता है — ज्ञाता, जाना गया जगत्, तथा उन्हें जोड़नेवाली शक्ति — वह माया का एक ही खेल है: नेत्र आत्मा का है, उसमें दिखने वाला रूप जगत् का है, नेत्र में छिपा सूर्य का तेज देवताओं का है; अन्य इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि भी यही त्रिविध स्वभाव धारण करती हैं, जबकि इन सबकी साक्षी आत्मा स्वयं अपने स्वभाव से प्रकाशित होकर पृथक् रहती है। काल की इस सूक्ष्म क्रिया से यह प्राचीन, निरर्थक विवाद उत्पन्न होता है कि क्या आत्मा शरीर से भिन्न वास्तव में है भी — यह विवाद उन मनो के लिए शान्त नहीं होता जो भगवान् से विमुख हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 30–33)



प्रकृति तथा पुरुष एक-दूसरे से मूलतः भिन्न हैं, भगवान् घोषणा करते हैं, यद्यपि उनकी अपनी माया नित्य आत्मा को शरीर से बँधा हुआ प्रतीत कराती है, जैसे सूर्य अपने ही प्रतिबिम्ब से बँधा प्रतीत हो (श्लोक 29)।

आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में कैसे जाती है

इससे प्रेरित होकर, उद्धव ने वह प्रश्न पूछा जो हर हृदय के निकट है: वह एक आत्मा, जो सर्वत्र समान रूप से विद्यमान है, एक शरीर को कैसे ग्रहण करती है और दूसरे को कैसे त्याग देती है, ठीक वैसे जैसे उस शरीर के पूर्वकर्म निश्चित करते हैं? कर्म अकर्ता को कैसे लग सकता है, अथवा जन्म-मृत्यु उसे जो दोनों से परे है — यह बात बुद्धिमानों के लिए भी सहज ग्राह्य नहीं। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 34-35)

श्रीभगवानुवाच

मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् ।

लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥

śrī-bhagavān uvāca manaḥ karma-mayaṁ nṛṇām indriyaiḥ pañcabhir yutam lokāl lokam prayāty anya ātmā tad-anuvartate

अर्थ: भगवान् ने कहा: पाँच इन्द्रियों से युक्त, जीवों का कर्मनिर्मित मन — जो अपने ही पूर्वकर्मों के संस्कारों से बना है — एक लोक से दूसरे लोक में जाता है, और आत्मा, यद्यपि मन से भिन्न है, उसका अनुसरण करती है जैसे उससे बँधी हो। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 36)

जन्म तथा मृत्यु मन का विस्मरण है

इस संचित कर्म से प्रेरित, मन मृत्यु के समय पूर्वदृष्ट अथवा पूर्वश्रुत विषयों में निमग्न हो जाता है, और उन्हीं संस्कारों के अनुरूप एक नए शरीर की ओर खिंच जाता है, पूर्व का समस्त स्मरण खोकर — यही विस्मरण, वास्तव में, मृत्यु ही है। इसी प्रकार ऋषिगण जन्म कहते हैं जब मन, गहरी आसक्ति से, एक नए शरीर से पूर्णतः तदाकार हो जाता है, जैसे स्वप्न में दिखने वाले शरीर से तदाकार हो जाता है, पूर्व स्वप्न के शरीर को

भूलकर, वर्तमान को सर्वथा नया अनुभव करते हुए, यद्यपि वह पुराना ही है। शरीर, इन्द्रियों तथा मन का यह आवरण, उस एक अपरिवर्तनीय आत्मा में बार-बार प्रकट होकर, आन्तरिक तथा बाह्य भेद का समस्त बोध उत्पन्न करता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 37-41)

दीपक से दीपक में संचरित होती लौ के समान

हे प्रिय उद्धव, प्रत्येक सृष्ट प्राणी काल की अगोचर गति से प्रतिक्षण उत्पन्न होता तथा नष्ट होता है; केवल उसकी सूक्ष्मता ही इस निरन्तर प्रकट-तिरोहित होने को अदृष्ट रखती है, जैसे दीपक की लौ, नदी का जल, अथवा वृक्ष का फल।

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ।

सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥

so 'yam dīpo 'rciṣāṁ yadvat srotasāṁ tad idaṁ jalam so 'yam pumān iti nṛṇāṁ mṛṣā gīr dhīr mṛṣāyusām

अर्थ: जैसे मनुष्य लौ के विषय में मिथ्या कहते हैं “यह वही दीपक है,” अथवा बहते जल के विषय में “यह वही धारा है,” वैसे ही अज्ञानी शरीर के विषय में मिथ्या कहते हैं “यह वही व्यक्ति है” — यह केवल उन लोगों की भ्रमपूर्ण समझ है जिनका अपना जीवन-काल भी बीत रहा है। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 44)

इसी प्रकार, आत्मा, केवल अपने पूर्वकर्म के बीज से प्रेरित होकर, वास्तव में न कभी जन्मती है न मरती है; किन्तु माया के कारण वह जन्मती तथा मरती प्रतीत होती है, ठीक वैसे जैसे अग्नि काष्ठ के संयोग से उत्पन्न तथा उसके वियोग से लुप्त होती प्रतीत होती है। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 45)



जैसे एक दीपक से दूसरे दीपक में संचरित लौ को मिथ्या ही वही लौ कहा जाता है, वैसे ही शरीर को भी प्रतिदिन मिथ्या वही माना जाता है — केवल भीतर की आत्मा वास्तव में अपरिवर्तित रहती है (श्लोक 44)।

शरीर को नौ अवस्थाएँ, और वह बीज जो कभी नहीं मरता

शरीर अपने आरम्भ से नौ अवस्थाओं से गुजरता है — गर्भप्रवेश, गर्भस्थिति तथा जन्म; बाल्यावस्था, कौमार, यौवन, मध्यवय, वृद्धावस्था; तथा मृत्यु। प्रकृति से मिथ्या तदाकार हुई आत्मा इन उठती-गिरती अवस्थाओं को अपनी मानती है, जबकि कोई अन्य, भगवान् की कृपा से, प्रयत्नपूर्वक इन्हें त्यागने में सफल होता है। जैसे अपना जन्म पुत्र के जन्म से, और अपनी मृत्यु पिता की मृत्यु से अनुमानित की जा सकती है, वैसे ही जो जन्म-मृत्यु को वास्तव में जानता है, वह स्वयं उनसे कभी बँधता नहीं। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 46–48)

तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वाञ्जन्मसंयमौ ।

तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥

taror bīja-vipākābhyāṁ yo vidvāñ janma-saṁyamau taror vilakṣaṇo draṣṭā evaṁ draṣṭā tanoh pṛthak

अर्थ: जो वृक्ष के बीज से अंकुरित होने तथा फल देकर सूखने को जानता है, वह उस वृक्ष से द्रष्टा के रूप में स्पष्टतः भिन्न है; इसी प्रकार शरीर का द्रष्टा — आत्मा — स्वयं शरीर से भिन्न है। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 49)



जो वृक्ष के बीज से अंकुरित होने तथा फल देकर सूखने को जानता है, वह उस वृक्ष से द्रष्टा के रूप में भिन्न है — इसी प्रकार आत्मा उस शरीर से भिन्न है जिसमें वह निवास करती है (श्लोक 49)।

तीन गुणों से बँधी, साक्षी-भाव से मुक्त

इस भेद को न पहचान कर, तथा इन्द्रिय-सुख को ही एकमात्र सत्य मानकर, अज्ञानी आत्मा जन्म-मृत्यु के चक्र में बार-बार घूमती है — सत्त्वगुण से उत्पन्न सद्गुणों द्वारा देवताओं के लोक को प्राप्त होती है, रजोगुण से सामान्य मनुष्यों के मध्य उतरती है, अथवा तमोगुण के शोक तथा मोह से निम्न सृष्टि की ओर गिरती है। किन्तु आत्मा वास्तव में कभी कर्म नहीं करती; वह उस मनुष्य के समान है जो दूसरों को नाचते देखकर उनका अनुकरण करने लगता है, उनकी गति को अपनी मान लेता है — जैसे बहते जल के किनारे वृक्ष स्वयं चलते प्रतीत होते हैं, वैसे ही शरीर की

क्रिया अचल आत्मा पर केवल प्रतिबिम्बित होती है। यह समस्त अनुभव, स्वप्न के समान, मिथ्या ही है, और यह भ्रमण उस व्यक्ति के लिए समाप्त नहीं होता जो इन्द्रिय-सुख को अपना मानकर उसमें लीन रहता है, जैसे स्वप्न की विपत्तियाँ उस व्यक्ति के लिए समाप्त नहीं होतीं जो अभी जागा नहीं। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 50-55)

नीच इन्द्रियों को तृप्त न करें

भगवान् ने कहा, अतः, हे उद्धव, इन अयोग्य इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग अब और न करो; इस द्वैत के भ्रम को वैसा ही देखो जैसा यह वास्तव में है — आत्मा के अग्रहण से उत्पन्न केवल एक प्रतीति। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 56)

चाहे दुष्टों द्वारा निन्दित, अपमानित, पीटा, बाँधा गया हो, अथवा जीवनवृत्ति से वञ्चित किया गया हो, जो वास्तव में कल्याण चाहता है उसे अपनी ही युक्ति के बल से स्वयं को उद्धार करना चाहिए। उद्धव ने विनीत भाव से पूछा कि वे ऐसी समझ कैसे प्राप्त करें, यह स्वीकार करते हुए कि विद्वान् भी ऐसे अपमान को सहन करने में कठिनाई पाते हैं, केवल उन्हें छोड़कर जो भगवान् के चरणों में शरण लेकर, उनके नामों की प्रेमपूर्ण सेवा से अपनी वासनाओं को शान्त कर चुके हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 22, श्लोक 57-60)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. तत्त्वों की हर गणना सत्य है। प्रत्येक गणना वैध है, क्योंकि प्रत्येक तत्त्व कारण-कार्य रूप से अन्य में समाहित है (श्लोक 4-25)।
2. प्रकृति तथा पुरुष वास्तव में भिन्न हैं, यद्यपि वे एक प्रतीत होते हैं। भगवान् की अपनी माया, तीन गुणों के माध्यम से, नित्य आत्मा को शरीर से बाँधा हुआ प्रतीत कराती है (श्लोक 29-33)।
3. मन, आत्मा नहीं, एक शरीर से दूसरे में जाता है। आत्मा केवल मिथ्या तदाकार होकर मन का अनुसरण करती है (श्लोक 36)।
4. जन्म तथा मृत्यु मन का विस्मरण तथा स्मरण है। दोनों मन से सम्बन्धित हैं, अपरिवर्तनीय आत्मा से नहीं (श्लोक 37-41)।
5. काल की गुप्त गति सब कुछ क्षणिक रूप से समान प्रतीत कराती है। जैसे लौ अथवा धारा को मिथ्या “वही” कहा जाता है, वैसे ही शरीर को भी; केवल भीतर की आत्मा वास्तव में वही नहीं रहती (श्लोक 44-45)।
6. आत्मा शरीर की नौ अवस्थाओं की मौन साक्षी है। जैसे बीज के अंकुरण को जाननेवाला वृक्ष से पृथक् रहता है, वैसे ही आत्मा शरीर से पृथक् रहती है (श्लोक 49)।
7. भगवान् का स्मरण ही जीवन के आघातों से एकमात्र शरण है। जो उनके चरणों में शरण लेते हैं, वे अपमान तथा हानि को युक्ति तथा भक्ति से सहन करते हैं (श्लोक 56-60)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में सबसे अधिक स्पर्श करने वाली बात भगवान् का धैर्य है, इससे पहले कि वे किसी को सुधारें। उद्धव एक ऐसा प्रश्न लेकर आते हैं जिसे सरलता से टाला जा सकता था — ऋषिगण एक ही संख्या पर सहमत क्यों नहीं हो जाते — फिर भी भगवान् पहले प्रत्येक गणना का सम्मान करते हैं, दिखाते हुए कि प्रत्येक एक ही सृष्टि को देखने के युक्तियुक्त दृष्टिकोण से उत्पन्न हुई है। हम सभी के लिए, जो अपनी ही समझ

से आसक्त हो जाते हैं, इसमें एक शान्त शिक्षा है: सत्य अनेक रूप धारण कर सकता है, फिर भी सत्य ही रहता है, जब तक वह युक्तिपूर्वक तथा निरभिमान भाव से कहा जाए। प्रत्येक दृष्टिकोण का सम्मान करके, भगवान् तब उद्धव को उस वास्तविक विषय की ओर ले जाते हैं — जो आत्मा प्रश्न करती है, वह गणना की जा रही देह नहीं है। जिस दीपक की लौ रात्रि-प्रति-रात्रि समान प्रतीत होती है, वह वास्तव में वही लौ कभी नहीं होती, फिर भी भीतर कुछ है जो अपरिवर्तित रहकर उसे बदलते देखता है। उस साक्षी का स्मरण, अपने ही परिवर्तनशील ऋतुओं के मध्य, वहीं खड़ा होना है जहाँ उद्धव पहुँचाए गए।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जब आपको किसी छोटे-से विवाद में अपना ही मत सर्वथा सत्य प्रतीत हो, तो क्षणभर ठहरिए और स्मरण कीजिए कि भगवान् ने गहरा सत्य प्रकट करने से पहले प्रत्येक ऋषि की गणना का सम्मान किया; यह स्मृति आपको असहमत होनेवाले के प्रति कोमल बनाए। और जब कोई अपमान अथवा कठिनाई आपकी शान्ति को भंग करे, स्मरण कीजिए कि आप साक्षी हैं, दृश्य नहीं — लौ के साक्षी, स्वयं लौ नहीं — और उस स्मृति में कुछ श्वासों के लिए विश्राम कीजिए, कोमलता से जपते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।”

उपसंहार

एकादश स्कन्ध का द्वाविंश प्रवचन अत्यन्त कोमलता से उस प्रश्न का उत्तर देता है जो साधकों को विभाजित कर सकता था: सृष्टि के सत्य तत्त्व कितने हैं? भगवान् दिखाते हैं कि ऋषियों की प्रत्येक गणना सत्य है, क्योंकि सब कुछ कारण-कार्य रूप से एक-दूसरे में समाहित है; और वहाँ से वे उद्धव को उस वास्तविक सत्य की ओर ले जाते हैं — आत्मा तथा प्रकृति, अत्यन्त भिन्न होते हुए भी, केवल उनकी माया के द्वारा एक प्रतीत होते हैं, और आत्मा, यद्यपि वह कहीं वास्तव में जाती नहीं, एक शरीर से दूसरे में जाती प्रतीत होती है केवल इसलिए कि मन अपने पूर्वकर्मों का फल लिए हुए भूल जाता है और पुनः जन्म लेता है। जैसे एक रात्रि से दूसरी रात्रि “वही” कहलाने वाली लौ, शरीर निरन्तर बदलता रहता है जबकि आत्मा उसकी शान्त, अचल साक्षी बनी रहती है — इस स्मृति से युक्त होकर, संसार के कठोरतम आघात भी शान्तिपूर्वक सहे जा सकते हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, द्वाविंश प्रवचन, पृष्ठ 616–623।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध अथवा समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-22-tattva-ganana-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

